Blueprint:

Blueprint for **" Kumaon Himalaya Ki Lok Gatha Paramparayen- Lok Swar"** under the Scheme Safeguarding the Intangible Cultural Heritage and Diverse Cultural Traditions of India, sanctioned under Sanction Letter No: **28-6/ICH-Scheme 67/ 2013-14/13651**, Dated: **31st. March, 2014**.

1. INTRODUCTION

" Kumaon Himalaya Ki Lok Gatha Paramparayen - Lok Swar"

The traditional oral performing art form–'Lok-Gatha' holds a significant position in the Kumaon area of Uttarakhand state. It's a tradition which is practiced in every village of Kumaon area and is still nurtured by the folk singers, there. The social and religious acceptance achieved by 'Lok-Gatha' speaks volumes about its pivotal role.

Hence, it is very important to study the traditional art form of 'Lok-Gatha' to understand Indian culture. 'Kumaoni Lok-Gatha' is an integral part of the history of human foundation. All traditional forms of 'Lok-Gatha' are of great value in Uttarakhand.

'Lok-Gatha' essentially consists of a story at its core. It thoroughly describes the attributes of a character thus making it legendary. It describes the courage and sacrifice of local heroes. The collective support of the entire society is another reason for making it legendary. Every individual contributes to its success. Most of the prevailing 'Lok-Gathas' are prevalent in every district in some form or the other.

In reality, understanding the origin of 'Lok-gatha' is an extremely complex issue. Unavailability of creditable documented evidence about Lok-gatha, is the prime reason causing complications. As the performers of Lok-gatha have always expressed orally, one only comes across a history of oral traditions; owing to which, there's an element of mystery around 'Lok-gathas'. Hence, the main purpose of this documentary is to document the oral tradition of 'Kumaoni Lok-gatha' which would help in understanding the Indian culture.

2. OBJECTIVE

To study, research and document the oral tradition of 'Kumaoni Lok-Gatha' through a documentary film.

3. IMPLIMENTATION

Step 1: Field research, survey, interviews with folk artists, historians and locals.
Step 2: Script writing of documentary film.
Step3: Shooting of the documentary.

4. LOCALE

We will research and shoot in following District of Kumaon Uttarakhand -

Pithoragarh, Nainital ,Almora ,Champawat And Bageshwar

5. DATES

Research Work will commence from 1st May 2014 to 31St July 2014.

Shooting of the documentary will commence from 16 August 2014 .

Editing and post production: Oct.- Nov.

6. CONCLUSION

After the completion of the 60 min. documentary film, we shall submit the DVD to 'Sangeet Natak Academy'.

Ahsan Bakhsh
C/o Iqbal brothers
Main market
Pithorgarah
Uttarakhand
Pin-262501
Mobile no:9869089403

सेवा में,

सचिव

संगीत नाटक अकादमी

रविन्द्र भवन

नई दिल्ली.

विषय : **Scheme for Safeguarding the Intangible Cultural Heritage and Diverse Cultural Traditions of India.**

महोदय,

निवेदन इस प्रकार है कि प्रार्थी अपने "Scheme for Safeguarding the Intangible Cultural Heritage and Diverse Cultural Traditions of India." के अंतर्गत स्वीकृत वृत्तचित्र - "कुमाँऊ हिमालय की लोकगाथा गायन परम्परायें-लोक स्वर" कार्य की प्रथम प्रगति रिपोर्ट प्रेषित कर रहा है ।

यह प्रथम प्रगति रिपोर्ट क्षेत्र भ्रमण, सर्वे कार्य, वार्ता व शोध अध्ययन पर आधारित है ।

इस कार्य प्रगति के अनुसार वृत्तचित्र की स्क्रिप्ट का निर्माण कर फिल्मांकन किया जाएगा । और वृत्तचित्र डीव्हिडी फॉरमट में सचिव, संगीत नाटक अॅकेडमी को सौप दिया जाएगा ।

धन्यवाद !

डॉ. एहसान बख्श

C/o. इकबाल ब्रदर्स

मेन मार्केट, जिला - पिथौरागढ

पिन - 262501, उत्तराखण्ड

संलग्न :

प्रथम कार्य प्रगति रिपोर्ट

प्रथम कार्य प्रगति रिपोर्ट

कुमाँऊ हिमालय की

लोकगाथा गायन परम्परायें-

लोक स्वर

वृत्तचित्र फिल्म निर्माण द्वारा प्रलेखन

Scheme for Safeguarding the Intangible Cultural Heritage and Diverse Cultural Traditions of India

पता -

C/o. इकबाल ब्रदर्स

मेन मार्केट, जिला - पिथौरागढ

पिन - 262501, उत्तराखण्ड

मोबाईल - 09869089403

प्रस्तुतकर्ता -

डॉ. एहसान बख्श

एम. ए. इतिहास, बी. एड.

स्नातक राष्ट्रीय नाट्य

विद्यालय, नई दिल्ली.

कुमाँऊ हिमालय की

लोकगाथा गायन परम्परायें-

कत्यूरी शासको व चंदशासको के काल में कुमाँऊ में लोक कलाओं का विकास हुआ । मध्य काल में लोक कलायें कुमाँऊ में अपने चरम में पहुच गई । जागेश्वर, अल्मोडा, पिथौरागढ चम्पावत, बागेश्वर और बैजनाथ आदि कुमाँऊ में लोककलाओं के केंद्र कें रुप में स्थापित हुए । कुमाँऊ में लोक कलाओ के साथ - साथ ज्योतिष, आयुर्वेद, संस्कृत, साहित्य व तंत्र-मंत्र आदि का काफी प्रचार हुआ। कत्यूरी शैली के मंदिर उस समय की महान देन हैं । इस काल में लोककलायें और लोकगाथायें कुमाँऊ के जनजीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गयी ।

इस लोक गाथाओं मे लोक गायकों ने निम्न विषयों को अपना आधार बनाया -

१) वीरता

२) प्रेम

३) त्याग

जिसके कारण इन लोक गाथाओं के चरित्र मौखिक परम्परा में समाज के अन्दर से निकले और लोक गाथाओ में समा गये । यही कारण है कि यह लोक गाथाएँ अपने समय काल को समझने के लिये एक महत्वपूर्ण सूत्र बन गई है । इन मौखिक लोकगाथा गायन परम्पराओं का हिमालय के सन्दर्भ में सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक महत्व है जिस कारण यह वृत्तचित्र महत्वपूर्ण हो जाता है ।

प्रस्तुत वृत्तचित्र की स्क्रिप्ट का आधार निम्नलिखित शोधकार्य होगा -

कुमाँऊ के लोक परम्पराओं में लोकजीवन की संस्कृति का निर्मल प्रतिबिंब झलकता है, लोकजीवन की जैसी अभिव्यक्ति गाथाओं में होती है वैसी अन्यत्र नहीं। साथ ही गाथाओं में लोकजीवन में प्रचलित अन्य परंपराएँ, रुढियाँ, जादू -टोने, भूत- प्रेत आदि तत्वों का समावेश बहुतायत से मिलता है।

कुमाँऊ में वर्ष भर अनेक त्यौहार और लोकउत्सव मनाए जातें हैं। जिन तिथियों में स्नान - दानादि कर्म होते हैं, वे पर्व कहलाते हैं। जिनमें आमोद- प्रमोद, हर्ष -आंनद आदि का समावेश अधिक होता है, वे लोक उत्सव कहलाते हैं, इनमें में जीवन के सत्य को प्रतिपादित करने की दृष्टि से लोक कलाओं का महत्वपूर्ण योगदान है । लोक कलांए ऐसी रचनाएं हैं जिसमें जनजीवन का ज्ञान संचित है जिससे शाश्वत व सामूहिक दोनों प्रकार का सत्य उजागर होता है। लोक कला इसलिए अत्यंत आकर्षित करती हैं क्योंकी इसमें जीवन के विरोधाभासों से मुक्त होने पर भी मानस निष्क्रिय नहीं होता। धर्म व परम्पराओं में कहीं कलाएं अपना स्थान रखती हैं जोकि पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षण पाती रहती हैं।

कुमाँऊ के जन जीवन में जो महत्व श्रम का है। वही महत्व लोक पर्वो का भी है। लोक पर्वो का आनन्द श्रम का ही परिणाम होता है। कुमाँऊ ग्रामीण जीवन में पर्वो का आर्थिक महत्व जहाँ एक स्तम्भ है वहीं लोक कलाओं के दर्शन हेतु यह एक दर्पण का कार्य करते हैं । ग्रामीण जन स्वयं के भीतर की कलात्मकता को बाहर लाने का प्रयास करते हैं । लोक पर्वो का दर्शन मुख्यतः ग्रामीण सोच व जीवन पध्दति का एक लोक पक्षीय ज्ञान है। जहाँ अमूर्त विचार लोकमूर्त रुप में सजीव होकर जीवन्त हो जाता है। कुमाँऊनी इतिहासकार डॉ. पाण्डेय के अनुसार कुमाँऊ के त्यौहारों में यहाँ की धार्मिक परम्पराओं का परिचय मिलता है।

किसी भी क्षेत्र का लोकजीवन उस क्षेत्र विशेष की समन्विता के दर्शन कराता है , और वहाँ के व्रत, उत्सव व त्यौहार लोकजीवन में आस्था, विश्वास, श्रध्दा, समरसता, उत्साह, आंनद आदि विविध जीवन - रंगों को भरकर उसको मोहक रुप प्रदान करते हैं। व्रत, त्यौहार एवं उत्सव लोकजीवन की नीरसता को मिटा देते हैं।

कुमाँऊ की बोली का हिंदी की तरह समुचित व्याकरण है - सँज्ञा, सर्वनाम , विशेषण, क्रिया आदि हिंदी के समान ही प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार लिंग, वचन, काल, उपसर्ग, प्रत्यय आदि का भी समुचित प्रावधान है। किंतु जैसी की उक्ति है - **आध कोस पर बदले पानी चार कोस पर बानी** में भी विभिन्न क्षेत्रों की बोलियों के उच्चारण, शब्दावली, बोलने के ढ़ंग आदि में पर्याप्त परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है और यह बोली लोकपरम्पराओं की लोकभाषा है।

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार कुमाँऊ धार्मिक भावना से ओत- प्रोत है। आध्यात्मिक भावना यहाँ के लोक - मानस में पूर्णतः समायी हुई है। परमात्मा और प्रकृति के प्रति यहाँ के मानव में परम विश्वास है। हर अलौकिक शक्ति या प्रभावकारी शक्ति यहाँ के लिए देवतुल्य है। यहाँ तक कि अनिष्टकारी शक्तियाँ भी उत्तराखण्ड में देवी -देवताओं की तरह पूजी और नचायी जाती हैं। यही कारण है कि देवी – देवताओं से लेकर अंछरियों (अप्साराओं), भूतों और रणभूतों आदि को देवताओं की तरह पूजा और नचाया जाता है। कुमाँऊ के लोक नाट्य में देवी - देवताओं की अमिट छाप है। सामाजिक नृत्यों में भी धार्मिक भावना के दर्शन होते हैं। यहाँ तक कि स्वच्छन्द गीत गाने वाले ढाक्की – बाद्दी भी अपने नृत्य गीतों में देवी –देवता - विशेष का स्तवन (नृत्य गीत शुरु करने से पहले) करना नहीं भूलते। इन

नृत्य गीतों में लोक विश्वास, रिती –रिवाज, स्वच्छन्द जीवन और कुमाँऊनी लोक -. मानस के ह्रदय के हिमालयी दर्शन होते है।

लोकनाट्य कलाए वर्ग, धर्म या जाति या दल से संबंधित नहीं होती इनमें नीहित होता है समाज का दर्शन, जोकि कला रुप में सामने आता है। लोककला यदि धार्मिक प्रभाव को दिखाती है तो दूसरी तरफ उसमें धार्मिक प्रभावहिनता भी नीहीत है।

लोककला एक तरफ सामूहिक अभिव्यक्ति को दिखाती है तो दूसरी तरफ व्यक्तिपूरक दृष्टि को भी सामने लाती है। लोक कला के लिए समाज और व्यक्ति दोनों महत्वपूर्ण हैं।

लोक परम्पराओं की विधाओं में लोकगाथा का महत्व सर्वोपरि है। लोकगाथाएँ लोकविश्वासों पर आधारित होती हैं। इनमें क्षेत्र - विशेष की ईश्वरीय, अतिमानव शक्तियों, भूत- प्रेतों, राक्षस, परियों और प्रणय, वात्यत्य आदि की घटनाओं का सरल सुबोध भाषा में संगीतमय वर्णन होता है। मानव - सभ्यता के साथ - साथ नृत्यों , गीतों एवं गाथाओं व लोकनाट्यों का विकास हुआ होगा, जो कि मौखिक परंपरा के आधार पर एक पीढ़ी से दुसरी पीढ़ी तक पहुचंते गए। मौखिक परपंरा के कारण पूर्व की वाणीयों में अन्य व्यक्तियों एवं समूहों की वाणी भी मिश्रित होती गयी । इस प्रकार लोककवि एवं गायकों व लोक नृतकों द्वारा उनकी विषयवस्तु में वृध्दि की गयी। जिनका प्रभाव हम लोकनाट्य कलाओं पर देखेगे।

लोक जीवन में लोक रचियता अपनी रचना कला में जीवन के संदर्भ में ऋतुओं के महत्व को देखता है। कुमाँऊ में वसन्तागमन पर चैत्रमास की संक्रान्ति से रितु गीत गाए जाते हैं। इसलिए इन गीतों को चैता या चैती कहते हैं।

वैशाख के अन्त तक ये गीत गाए जाते जाते हैं। इन गीतों के गायक ढोली, दास तथा मिरासी होते हैं, जो ऋतु की कथा को गा - गा कर गाँव में चैतोल (चैत के महीने का हिस्सा) माँगते हैं। मुख्य गायक ढ़ोलक पर सुरिले स्वरों में कथा आरंभ करता है और साथ की महिलाएँ (पत्नी, वधू या पुत्री)भी उसके साथ भाग लेते है। अगले अध्याय में हम देखेंगे कि कैसे ये परम्पराएं लोकनाट्य में शामिल हो गयी।

इसी प्रकार रितुरैण प्रबंध गीत है, इसमें गोरिधना की गाथा चलती है। कथा की दुखान्तता की भाँती ही गीत का स्वर भी कारुणिक और उदासीला है, जिसकी प्रत्यक्षनुभूती गाथा गायक से गीत सुनने में ही हो सकती है, बारीकी से देखने पर इस परम्पराओं में भी लोकनाट्य के रंग मिलते है।

लोकनाट्य परम्पराओं में लोकजीवन की संस्कृति का निर्मल प्रतिबिंब झलकता है। लोकजीवन की जैसी अभिव्यक्ति गाथाओं में होती है वैसी अन्यत्र कहीं नहीं। साथ ही गाथाओं में लोकजीवन में प्रचलीत अन्य परंपराएँ, रुढ़ियाँ, जादू - टोने, भूत- प्रेत आदि तत्वों का समावेश से मिलता है।

कुमाँऊ में लोककला नाट्य की रचना करने वाला मुख्यतः वे लोग हैं जिन्हें कि शारीरिक श्रम करना पड़ता है। मुख्यतः ये वो लोग हैं जो की श्रम की प्रकिया से हट करके या अपने सामुदायिक जीवन से अलग - थलग हो करके सोच ही नहीं सकते। वे लोग कामगार हैं, जो कि भौतिक वस्तुयें बनाते और हर सामाजिक व्यवस्था के आधार - स्तम्भ हैं। इस तरह से लोककलाकार प्रत्यक्षत : भौतिक वास्तविकताओं के निर्माण में भाग लेता है और लोकनाट्य में जो कुछ भी बहूमूल्य है, उसका कारण यही विशिष्टता है। उदाहरण के लिए, इसमें परिष्कृत व कलात्मक रुचियों तथा उपयोगिता का सम्मिश्रण है। जिन लोगों को थका देने वाला श्रम करना पड़ता था उन्हीं के अन्दर से थकावट को दूर करने की भावना पैदा हुई, कल्पना की प्रत्येक प्राचीन उड़ान के

पीछे छिपी हुई भावना का पता लगा लेना आसान है और यह भावना है - सदा ही अपने श्रम की थकावट को कम करने की श्रमिक मात्र की इच्छा ।

यद्यपि परम्परागत विचारों में मानव की प्राचीन कल्पनाशीलता को धार्मिक दृष्टी से ही देखा गया है, और परिवर्तन के आधुनिक पक्षधर उनमें केवल, अज्ञान और तर्कहीनता की ही झलक पाते हैं, वस्तुः इन समान कलाओं ने मानव की संरचनात्मक कतृव्य के लिए एक महत्वपूर्ण चरण के रुप में देखनें में सहायता दी है। अन्य महान कलाकृतियों की तरह इनका भी शाश्वत सांस्कृतिक महत्व है।

कला की विभिन्न शास्त्रीय तथा अधिकाधिक सुरुचिपूर्ण विधाओं से लोककला को स्पष्टतः अलग- थलग करने वाली वस्तु उसकी संरचना का तौर तरीका ही है। इस संरचनात्मक प्रकिया अप्रत्यक्ष - प्रत्यक्ष दोनों ही रुप में समुदाय भाग लेता है: प्रत्यक्ष तब जब कि समुदाय एक साथ एक गीत बनाने, गाने और उस पर नृत्य करने में लगा होता है और अप्रत्यक्षतः तब जब कि एक समुदाय विशेष में एक या अनेक व्यक्ति ऐसी संरचना में लगे होते हैं।यदि इन रचनाओं का लोकपक्ष वास्तविक व प्रभावशाली हुआ तो ये समुदाय की कलात्मक परम्परामें घुल -मिल जाते हैं।

कुमाँऊ की धार्मिक पृष्ठभूमि से ज्ञात होगा कि हिन्दु देवी देवताओं के साथ कुमाँऊ में प्राचीन मान्यताओं के अवशेष अधिक मिलते हैं। यदपि बौध्द और नानक पंथी धर्मो के प्रभाव तक इस क्षेत्र में विद्यमान हैं। किंतु लोक जीवन में मुख्यता ग्राम्य देवी देवताओं के प्रभाव ही है ।

यहाँ के लोक - साहित्य में जितनी कथाओं का इन देवी देवताओं से संबंध हैं, यदि उनका संग्रह कराया जाय तो निश्चित रुप से शैव, शाक्त, अथवा वैष्णव धर्म संबंधी कथानकों से उनकी संख्या अधिक होगी।

आधुनिक काल में धार्मिक मान्यताए बड़ी तेजी से बदल रही हैं। फिर भी भौगोगिक कारणों से, पहाड़ो से घिरे रहने के कारण यहाँ के धार्मिक विश्वासों में अत्याधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। अठकिंसन का यह कथन आज तक सत्य है कि- **उत्तराखण्ड की प्रत्येक पाषाण शिला और नदी किसी न किसी देवता या ऋषि के नाम पर आधारित मानी जाती है और उसकी अपनी अपनी कथाएँ बन चुकी हैं। यहाँ की कठोर प्रकृति इस लोक विश्वास का प्रमाण है कि सर्वात्मा ईश्वर का निवास यहीं पर है।**

कुमाँऊ की उक्त धार्मिक पृष्ठभूमि विशेषकर उन धार्मिक लोक - गाथाओं की व्याख्या करनें में सहायक होती है, **जो कुमाँऊ भर में जागर नाम से प्रचलित है** । ये घर के भीतर और बाहर दोनों स्थानों में गाए जाते है। इनमें देवी देवताओं की अवतरण प्रकिया जितनी जटिल है उतनी ही रोचक भी है। रात रात भर जाग कर जो विशेष लोक गायक इनका गाथा गायन करते हैं, उन्हें जगरिये कहते हैं । हर कोई इन्हें नहीं गा सकता । नाचने वाला व्यक्ति, जिस पर आहूत देवता की आत्मा अवतरित होती है डंगरिया कहलाता है।

धार्मिक दृष्टि से ये गाथांए और तीन प्रकार की हैं -

1) **स्थानीय शासकों की जागर गाथाएँ।**

2) **सहायक शक्तियों की जागर गाथाएं और**

3) **स्थानीय वीर शासकों की जागर गाथाएं**

कुमाँऊ में इस प्रकार के जागरों की संख्या पचास से अधिक होगी और ये शैव धर्म का व्यापक प्रभाव सूचित करते हैं, तथा इनमें तांत्रिक परम्पराएं स्पष्ट देखी जा सकती हैं। जिन सहायक शक्तियों का आवाहन किया जाता है उनकी गाथाएँ प्राय: कथातत्व से रहित हो चली हैं। केवल उनकी स्तुती अथवा महात्म्य वर्णन शेष रह गया हैं, इनमें शक्तियों का स्वरुप निर्धारित किया गया हैं।

कुमाँऊ में कत्यूरी शासन की नीव ने जिस सांस्कृतिक बुनियाद को रखा वह समय-समय पर प्रगति कर नयी पीढ़ीयों के चिंतन व मनन से नये अर्थोमें समाज के सामने आती रही तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सामान्य जन की दृष्टि को नये अर्थ देती रही। प्राचीन काल से ही कुमाँऊ हिमालय क्षेत्र की लोक संस्कृति व जनजाति जन परम्पराओं में लोककलाओं का विशेष महत्व रहा है। इस क्षेत्र में जहाँ एक तरफ लोक परम्पराओं में पीढ़ी कलाएँ संरक्षण पाती रही है वहाँ दूसरी जनजाति जीवन दर्शन में कला के प्रति स्वयं का एक दृष्टिकोण है।

कुमाँऊ के जनजाति लोकजीवन की मुख्य धुरी छोटे - छोटे ग्रामीण अंचल हैं। शहरों व ग्रामीण लोक जीवन का मुख्य आधार वर्ण व्यवस्था पर आधारित है परन्तु लोक व जनजाति दोनों परम्परा में कलाओं का विशेष महत्व है। धार्मिक कार्यों, कृषि, मेलों, उत्सवों, संस्कारों व परम्पराओं में लोक ज्ञान व आदिम अभिव्यक्ति लोक कला रुप में समाहित है ।

कुमाँऊ की लोक -संस्कृति, दर्शन, धर्म, मान्यताएं व परम्पराओं ने लोककलाओं को लोकसाहित्य, लोकनृत्य, लोकगीत, लोकवादयों, काष्टकला, चित्रांकन कला, लोकनाटय, आदि के रुप में स्थापित किया है। लोककलाएं हिमालयी संस्कृति का एक अहम हिस्सा बनकर परम्पराओं से वर्तमान तक पहुंची हैं जिनमें

समय, अवधि, काल, स्थान, इतिहास, परम्पराओं, लोक ज्ञान, लोक दृष्टि तथा लोक मनोविज्ञान नीहित है।

कुमाँऊ हिमालय में जो लोककलाएं व्यक्ति से निकल कर सामूहिक रुप से प्राप्त करने में सफल रही उनमें प्रकृति और मानव के जीवन संघर्ष के सूत्र बिखरे हैं। लोक संस्कृति के संरक्षण में यदि धार्मिक भावना ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है तो दूसरी लोक मनोविज्ञान और विज्ञान ने संस्कृति को मात्र मनोरंजन का साधन स्वीकार ना कर उसे जीवन पध्दती का एक महत्वपूर्ण अंग बनाया है।

कुमाँऊ कें संदर्भ में लोक कलाएं ग्राम्य कला की सृजनात्मकता को लोकविश्वास के समुचित अर्थों में शास्त्रीता से अलग कर उसे लोक - धर्मिता का मंच प्रदान करती है, जहाँ प्रत्यक्ष रुप से कला लोकधर्मियता के साथ लोक में समाहित हो जाती है। लोक के संदर्भ में हिमालय की लोक संस्कृति एक महत्वपूर्ण सूत्र है जिससे कुमाँऊ हिमालय के सामाजिक जीवन को सांस्कृतिक दृष्टि के माध्यम से समझा जा सकता है। लोक मनोविज्ञान को ग्राम्य दृष्टि उसकी जटिलता के मापदण्ड पर समझने का प्रयास करती है और परम्पराएं जिनमें लोकसंस्कृति नीहित है उसके पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन कर एक समग्र दृष्टि को तलाशती है।

भौगोलिक दृष्टि से कुमाँऊ की सीमाएं नेपाल और तिब्बत से मिलती हैं जहाँ मुखौटा परम्पराएं और जात्रा परम्पराएं आज भी खेली जाती हैं। कुमाँऊ की सीमाएं तिब्बत से मिली जुली होने के कारण इन सांस्कृतिक परम्पराओं और विचारधाराओं का सांस्कृतिक प्रभाव कुमाँऊ में भी देखा जाता है।

कुमाँऊ की लोकसंस्कृति में लोककलाओं ने चौदहवीं सदी के पश्चात महत्वपूर्ण उत्थान प्राप्त किया। इसी समय कुमाँऊ में चंद राजवंश ने अपने शासन के प्रारंभ से ही लोककलाओं को महत्व प्रदान किया। इसी अवधि से कुमाँऊ के

दरवाजों, संदूको, भोज्य रखने के पात्रों व अन्य काष्ट वस्तुओं में अंकन की कला भी प्रारंभ हुई और मुखौटों ने स्थानीय वृक्षों की लकड़ी द्वारा लोक आकृतियाँ प्राप्त की जिसने मुखौटों को मध्ययुगीन लोक कलाओं के संदर्भ में एक अलग पहचान दी है। इसी अवधि में ज्योतिषी, आयुर्वेद, संस्कृत, साहित्य, तंत्र-मंत्र, मंदिरों की स्थापत्य कला, भवनों की निर्माण शैली का प्रसार हुआ और स्थानीय चित्रकला की शैली की भी नींव पड़ी। चित्रकला के लिए स्थानीय वृक्षों की छाल व भोज पत्रों का प्रयोग होने लगा जिसमें धार्मिकता के पक्ष गहन थे यह बात कुमाँऊ की सभी लोक कलाओं के संदर्भ में विशेष महत्व रखती हैं। कुमाँऊ के लाखामंडल, जागेश्वर, अल्मोडा, पिथौरागढ़, चम्पावत, बागेश्वर और बैजनाथ आदि स्थानों में आज भी मध्यकालीन लोक कलाओं के सूत्र बिखरे हुए हैं तथा लोककलाएं उत्सव, संस्कार, धार्मिक कार्यो व मेलों में संरक्षित रही है, जिनमें आदिम अभिव्यक्ति की मध्यकालीन दृष्टि व वर्तमान का लक्षण समाहित है।

कुमाँऊ में काष्ट व लोककलाओं के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह स्पष्ट होता है की भौगोलिक सीमाओं से कलाओं का आदान - प्रदान होता रहा है। चीन के यात्री व्हेन्सांग का कुमाँऊ आना, तिब्बती मुखौटों और नेपाल की जात्रा परम्पराओं के तथ्यों का हिल जात्रा जैसे लोकनाट्य में लक्षित होना यह स्पष्ट करता है कि उत्तराखण्ड की कलाओं ने अपने आस - पास की कलाओं से ग्रहण किया व उन्हें अपनी दृष्टि प्रदान की।

चीनी यात्री व्हेन्सांग ने 629 से 644 ई.के मध्य भारत के तीर्थो का भ्रमण किया। उसकी पुस्तक सी-यू-की से पता चलता है कि वह थानेश्वर से स्रुंघ्न (कालसी) पहुंचा, वहां से गंगोत्री गया। लौटते समय हरिव्दार (उत्तराखण्ड) आया। हरिव्दार के पास उसने मयूर नगर देखा, फिर वह ब्रह्मपुर पहुंचा। स्रुंघ्न और ब्रह्मपुर

के मध्य उसने मतिपुर नामक राज्य देखा। ब्रह्मपुर के उत्तर में हिमाच्छादित पर्वतों में वह सुवर्णगोत्र नामक राज्य की चर्चा करता है जहाँ शासन पर महिलाओं का एकाधिकार होने से उसे स्त्री राज्य भी कहते थे। ब्रह्मपुर से गौविषाण होते हुए आधुनिक बरेली के पास आदृच्छय नगर में पहुंचा। मानसखण्ड के अनुसार आधुनिक चम्पावत (कुमाँऊ) के बालेश्वर मन्दिर के समीप प्राचीन काल में बौध्द तीर्थ था।

एक बौध्द तीर्थयात्रा होने से यह संभव है कि व्हेन्सांग चम्पावत के बौध्द तीर्थ में गया होगा। टनकपुर (कुमाँऊ) के समीप सेनापती में भी बौध्द स्तूप के खण्डहर विद्यमान है, अतः सेनापानी से भी व्हेन्सांग गुजरा होगा। इस से स्पष्ट होता है कि इस अवधि में अवश्य ही चीन , तिब्बत व नेपाल का सांस्कृतिक प्रभाव कुमाँऊ क्षेत्र में रहा होगा।

कुमाँऊ में **ग्वाला** अर्थात पशुचारण परम्पराओं ने लोककला को सांस्कृतिक कला चेतना के रुप में जीवन बनाए रखा है। वर्तमान में भी यदि देखा जाये तो लोकसंस्कृती को **ग्वालों के कंठ** से ही जंगलो व प्रकृति के सामंजस्य से लोक संसार में मंच प्रदान हुआ है। जहाँ प्रकृति के आंगन में लोक गायक उन्मुक्त होकर स्वंय के भीतर की परंम्पराओं व दर्शन को बाहर लाता है और यही वह क्षण है जब लोक कलाएं जीवन्त हो उठती है और सामूहिक अभिव्यक्तियाँ प्रकृति के उददीपन से खुद प्रेरित होकर लोककला का सृजन करती है। जहाँ एक तरफ यह जंगल परम्पराएँ हैं । जो मनोरंजन एंव जीवन सत्य का प्रतिपादन करने की **ग्वालों** की दृष्टि से इन रचनाओं में महत्वपूर्ण सामग्री देती है। वैसे तो सारी लोक रचनाएँ ही जन - जीवन के अनुभूत ज्ञान से भरी हुई है , फिर भी लोकोक्तियाँ और कहावतें इस दृष्टि से अधिक उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा शाश्वत एंव सामयिक दोंनो सत्य उजागर होते हैं।

लोककलाएं जन समाज की प्रत्येक स्थिती के अनुकूल या प्रतिकूल निजी अनुभवों के आधारों पर एक दृष्टिकोण बन देती है। जीवन, जगत, भाग्य, समाज, आचार विचार, रहन-सहन सभी को वे एक विशिष्ट मापदंड पर तोलने की अभ्यस्त हो जाती हैं। अतः कहवतों में अनुभूतियों के आधार पर कहीं जीवन- दर्शन की एक कट्टर भाग्यवादी दृष्टिकोण है तो दूसरी ओर भाग्य पर ही निर्भर रहने वाले व्यक्तियों पर व्यंग किया गया है। कहा गया है कि कर्म ही दूसरे जन्म का भाग्य बनाता है।

भाग्य संबंधी कहावतें कुमाँऊ वासियों की रुढिवादिता को व्यंजित करती है। उनका अखंड विश्वास है कि होनी होकर रहती है अभागे के लिए परिस्थितियां उलटी हो जाती हैं। तराजू के पलडे कभी नीचे कभी ऊपर होते ही रहते है! कभी घी खाना तो कभी मुटठी भर चने खाना! अभागा परदेस पहुँचा और वहाँ भी अकाल पड़ा, इस तरह का लोक दृष्टिकोण समाज की व्याख्या करता है।

कुमाँऊ में मेलों का भी बहुत महत्व है। मेले ग्रामीण जीवन के लिए एक तरफ आर्थिक पहलू व जरुरतों को दर्शाते हैं तथा दूसरी तरफ लोक संस्कृति के वाहक बनते है। आज भी उत्तरांचल में बहुत से ऐसे मेले हैं जिन्हे हम निम्न भागों में बांट सकते है ।

1) **भोतान्तिक प्रदेशों के मेले।**

2) **कुमाँऊ के मेले।**

3) **गढ़वाल क्षेत्र के मेले।**

4) **तराई व भाबर क्षेत्रो के मेले।**

5) **जौनसार क्षेत्र के मेले।**

इन मेलों में जिनको कौतिक भी कहा जाता है ग्रामीण लोकज्ञान को विभिन्न रुपों में सामने लाया जाता हैं । जहाँ व्यक्तिक और सामूहिक लोककलाएं जीवन्त हो जाती है। पहाड़ों में थका देने वाला श्रम लोक के जीवन संघर्ष को दर्शता है तो लोक कला की उर्जा उसे नया कहने की शक्ति देती है। कृषि के कार्य हों या धार्मिक, सामाजिक उत्सव संस्कार सभी जगह लोक के सूत्र अलग - अलग रुपों में बिखरे हैं यह लोकगीत हैं तो कहीं नृत्य, लोकनाटय, लोकसंगीत, लोकवादय, लोकगाथा, काष्ट कला, ऐपण, चिंत्राकण, डिकार के रुप में दृष्टिगोचर होते हैं। कुमाँऊ के कुछ मेले इस प्रकार :-

मेले का नाम	-	**जगह का नाम**
जौल जीवी का मेला	-	**पिथौरागढ़**
चैती मेला	-	**काशीपुर (नैनीताल)**
भिकिया सेन का मेला	-	**अल्मोड़ा**
मानेश्वर	-	**चम्पावत**
नन्दा देवी मेला	-	**अल्मोड़ा / नैनीताल**
उत्तारायणी मेला	-	**बागेश्वर**

इन सभी मेलो में लोकसंस्कृति आज भी जीवन्त हो उठती है कुमाँऊनी समाज से जुड़ी लोककलाएं इन मेलो में आज भी अपना रंग बिखेरती है।

कुमाँऊ के लोकसाहित्य में भाषा के संदर्भ में कुमाँऊ क्षेत्र में जहाँ कुमाँऊनी भाषाओं में भिन्नता मिलती है वहीं जौनसार भाभर और भोटान्तिक भाषा में भी एकरुपता ना होने पर भी लोकसाहित्य में कहीं ना कहीं एक सामांजस्यता दिखाई देती है । कुमाँऊ के लोककलाओं में मंगल गीत हैं जिन में भगवान की आराधना करते

हुए लोकगायक स्थानीय देवताओं का भी आदर करता है और लोकसाहित्य स्वयं की अवधारणा में स्थानीय ईश्वरीय अवधारणा को महत्व और स्थान देता है।

कुमाँऊ के लोकगीतों में जहाँ एक तरफ वीरता के गीत गाये जाते हैं वहीं दूसरी तरफ ऋतुओं, तंत्र -मंत्र, लोरी, प्रेमी आदि के संबधित गीत भी लोकनृत्य जो लोककला को महत्वपूर्ण मंच प्रदान करते है।

उत्तराखण्ड का ग्रामीण व शहरी जीवन वन व्यवस्था पर आधारित है, लोकसंस्कृती के समस्त विचारों मान्यताओं, परम्पराओं व दर्शन को मानव अभिव्यक्ति के रुप में कलाओं का दर्पण बनाती है। समाहित लोकसंगीत के माध्यम से मानव मन के विस्तृत भावों को सामने लाते हैं। महत्वपुर्ण बात है कि लोकगीतों के रचयिता अज्ञात हैं जो की वर्षो से पीढ़ी दर पीढ़ी नये परिपेक्ष में लोक मानस के सामने आते हैं। लोकसाहित्य मुक्त है यह बिना किसी शास्त्रीयता के सामाजिक, धार्मिक, संस्कार, अनुष्ठान मनोरंजन , ऋतु, उत्सव की भावना को अपने में सामाहित कर उसका संबंध लोक से करता है व जहाँ लोक कलात्मकता को पाती है।

कुमाँऊ में लोककलाएं जो लोकगीत, लोकसंगीत,लोकनाट्य, लोकनृत्य, लोकभाषा, काष्ट कला, चित्रांकण, लोकवाद्य, मुहावरे, पहेलियों , लोकसाहित्य के रुपों में बिखरी है, ये सभी कहीं ना कहीं लोक का संबंध प्रकृति से जोडती हैं, जिससे मनुष्य और कलाओं के बीच की कडी एक गहनता से उभर कर सामने आती है और कला मात्र कला ना होकर मान्याओं व परम्पराओं का नये अर्थो में सामने रखती है।

उत्तराखण्ड की जनता मुख्य रुप से हिन्दू धर्म से हिन्दू धर्म को मानने वाली है, जहाँ शैव , शाक्त अथवा वैष्णव धर्म संबंधी विचारधाराएं कलाओं में निहित

हैं। उत्तराखण्ड की पहाडियों में मंदिरों की संख्या और उनका स्थापत्य ज्ञान उस समय अवधि को दर्शाता है जिस अवधि में उनका निर्माण हुआ था।

कुमाँऊ में लोकनाट्य की परम्पराएं भी हैं उदाहरण के लिए **हिलजात्रा, हिरनचित्तल व भडौं व अन्य परम्पराये इसका अध्ययन हम आगें विस्तृत रुप मे करेंगे।** कुमाँऊ गढ़वाल क्षेत्र में लोक कलाओं के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि लोककलाएं मात्र मनोरंजन का साधन नहीं है वरन उनमें कहीं ना कहीं दैवीय भावना निहित है जो कि कला के रचने वाले को अर्थात उन्हें जो की शारीरिक श्रम करते हैं धार्मिकता के आधार में सामूहिकता में समाहित होकर लोककलाओ के माध्यम से मानव मन के विस्तृत भावों को सामने लाते हैं ।

महत्वपूर्ण बात यह है कि लोकगीतों के रचयिता अज्ञात हैं जो की वर्षो से पीढ़ी दर पाढ़ी नये परिपेक्ष में लोक मानस के सामने आते हैं । लोकसाहित्य मुक्त है यह बिना किसी शास्त्रीयता के सामाजिक, धार्मिक, संस्कार, अनुष्ठान, मनोरंजन, ऋतु, उत्सव की भावना को अपने में सामाहित कर उसका संबंध लोक से करता है व जहाँ लोक कलात्मकता को पाती है।

कुमाँऊ में लोककलाएं जो लोकगीत, लोकसंगीत, लोकनृत्य, लोकभाषा, काष्ट कला, चित्रांकन, लोकवादय, मुहावरे, पहेलियों, लोकसाहित्य के रुपों में बिखरी है, कहीं ना कहीं लोक का संबंध प्रकृती से जिससे मनुष्य और कलाओं के बीच की कडी एक गहनता से उभर कर सामने आती है और कला मात्र कला न होकर मान्यताओं व परम्पराओं का नये अर्थों में सामने रखती है । उत्तंराचल की जनता मुख्य रुप से हिन्दु धर्म को मानने वाली है, जहाँ शैव, शाक्त अथवा वैष्णव धर्म संबंधी विचारधाराएं कलाओं में निहित हैं। कुमाँऊ की पहाडिया में मंदिरों की संख्या

और उनका स्थापत्य ज्ञान उस समय अवधि को दर्शाता है जिस अवधि में उनका निर्माण हुआ था।

कुमाँऊ के अधिकांश लोककलाओं में व्यक्तिकता होते हुए भी कहीं ना कहीं सामूहिकता का एक विस्तृत दायरा है जो कि ग्रामीण सोच को एक धरातल पर लेता है। लोककलाओं में शिव, ब्रह्म, विष्णू, सूर्य, धरती, आकाश की बात होती है वहीं दूसरी तरफ स्थानीय देवों का स्मरण और स्थानीय प्रकृति के बिम्बों से परिचय कराते इन्हें सशक्त लोक मानिसकता का प्रतिनिधित्व बना देता है।

लोककलाओं में आंचलिकता प्रखरता से ऊभर कर सामने आती है और उसमें कहीं ना कहीं लोक के सुख दु:ख का रस छुपा रहता है व समाज की सुख की कामना की जाती है। कभी गायक बाराह महिनों को अपने गीतों में ले आता है तो कहीं बारिश को अपने गीत का आधार बनाता है, कभी लोक गायक हुड़कियाबॉल जैसे लोक गीतों में कृषि और श्रम को लोककलाओं से जोड़ देता है।

कुमाँऊ हिमालय में लोक के संदर्भ में लोककलाएं जीवन के महत्वपूर्ण पक्षों को इंगित कर लोक ज्ञान, लोक विज्ञान को कला के रुप में सामने लाती है और लोककला कलाकारों के माध्यम से जींवत हो उठती है। कुमाँऊ में ऋतुओं की कला के संदर्भ में महत्वपूर्ण हिस्सेदारी है, भादो मास में समस्त कुमाँऊ क्षेत्र में ग्रामीण जन आंठू का पर्व पूर्ण धार्मिक वातावरण में गौरा पूजन से करते हैं। गौरा के माध्यम से स्त्रियाँ स्वयं के भीतर की परम्पराओं को सामने लाती हैं और धर्म और कला का समिश्रण मानवीय सोच को उजागर करता है। भादो मास के समय धान की खेती अपनी चरम को छू रही होती हैं। महिलाएं धान के खेत से धान व सौंके में समाहित होकर लोक संगीत के माध्यम से मानव मन के विस्तृत भावों को सामने लाते हैं। लोकसाहित्य मुक्त है यह बिना किसी शास्त्रीयता के सामाजिक, धार्मिक, संस्कार, अनुष्ठान, मनोरंजन,

ऋतु, उत्सव की भावना को अपने में सामाहित कर उसका संबंध लोक से करता है व जहाँ लोक कलात्मकता को पाती है।

अतं: स्पष्ट है की कुमाँऊ हिमालय में लोकनाट्य कलाओं के संदर्भ में लोककलाएं वैयक्तिक और सामूहिक अभिव्यक्तियाँ रचनात्मकताओं का परिणाम है । जहा श्रम योजनाओं व प्रकृति उद्दीपन ने लोक मानस को कलासजृन के लिए उत्प्रेरित किया, वहीं समूह चेतना ने, उत्सवी – उत्साह ने, फसलों और वृक्षों की फलभरता ने सामूहिक आयोजनों को लोककलाओं के रुप में रुपायित किया है। यही कारण है की, लोककलाएं गाँव के आँगन से जुड़कर आम लोकमानस को अपने साथ जोड़ती है, और ये लोककलाएं मानव विकास का महत्वपूर्ण चरण बन जाती हैं ।

कुमाऊँ हिमालय में लोकगायको द्वारा वीर योध्दाओ और स्थानीय राजाओ की गाथाओं को गा कर कहने की परंपरा को ''भड़ा'' कहा जाता है। कुछ लोग इसे भड़ौ भी कहते है। कुमाऊँ के सभी जनपदों में ये गाथा गायन परंपरा रही है। भड़ा में नृत्य और अभिनव का पूर्ण समावेश रहता है। भड़ा का मुख्य गायक अभिनय में भी पारंगत होता है। वह पगड़ी, झगुला, अँगिया और चूडिदार पायजामा पहने होता है। उसके पैरो में घुँघरु बँधे होते है। हाथ में हुड़का रहता है। ब्याहादि और खेल-कौतिकों में भड़ा की परंपरा को देखा जा सकता है। भड़ा गायक राजाओं और योध्दाओं के प्रशस्ति-गायन के साथ ही विभिन्न ध्वनियों, हाव-भावों और संकेंतो के द्वारा प्रबंध में सजीवता एवं नाटकीयता का सर्जन करता है।

लोकगायक गाथा में वर्णित प्रसंगो के अनुरुप वीर, रौद्र, श्रृंगार, प्रेम और हास्यादि के विविध रुप अपनी अभिनय क्षमता के मुताबिक प्रस्तुत करता है। अभिनय के अन्य प्रकारों के समावेश के कारण ''भड़ा'' लोक नाट्य के अधिक निकट है।

डॉ. पोखरिया के अनुसार इन भड़ो गाथाओं में मुख्यता मध्यकाल में कुमाऊँ में राज्य करने वाले चंदवंश के राजाओ जैसे विक्रमचंद, भारतीचंद , ज्ञानचंद समेत अनेक स्थानिक शासकों की गाथाएँ होती है। जिसमें इसके जीवनकाल की मुख्य घटनाओं को क्रमबध्द तरीकेसे गायन शैली द्वारा लोगों को सुनाया जाता है ।

राजाओं के अतिरिक्त स्थानीय वीर योध्दाओं जैसे अजुबा बफौल व उसके बाईस भाई बफौली की गाथा, सिदुवा-बिदुवा की गाथा,रमोल गाथा व स्थानीय देवता गुरु गोरखनाथ की गाथा, मलिकार्जुन की गाथा समेत अनेक स्थानीय देवी-देवताओं की गाथाएँ इस भड़ा गायन परंपरा में देखी जा सकती है।

इन भड़ा गाथा की सबसे महत्वपूर्ण दृष्टी यह है कि इसमें उस समय के कुमाऊँ के समाज, राज्य, अर्थ, परंपरा और सोच की महत्वपूर्ण जानकारीयॉ छुपी है। जिससे कुमाऊँ के समझने के लिए सामाजिक, राजनितिक व आर्थिक दृष्टी से यह गाथाएँ महत्वपूर्ण हो जाती है।

जागर कुमाऊँ की जनता की धार्मिक भावना का परिचायक व वर्षों पूर्व संस्कृति का प्रमाण है। जागर मुख्यतः धार्मिक गाथाओं व स्थानीक लोक देवताओं पर आधारित होता है। जागर का शाब्दिक अर्थ जागृत करना अथवा जागरण करना है।देवता विशेष का आव्हान कर देवगाथा का वर्णन जागर की मुख्य विशेषता है।

जागर में जिस पुरुष या स्त्री के शरीर में देवता विशेष की आत्मा प्रवेश पाती है, डगरिया कहलाता है तथा जो व्यक्ति देवता के पूर्व कार्यो का बखान कर थाली, डमरू, ढोल-दमुवा व हुड़का की सहायता से देवता को जागृत करता है, जगरिया कहलाता है। जगरिया जागर के प्रारम्भ में सम्पूर्ण ब्रम्हांण्ड का वर्णन करता है फिर देवी देवताओं का आव्हान कर देवता विशेष को जागृत करता है। जागरिया के शब्दों में डगरिया के शरीर में कम्पन उत्पन्न होती है और देवता विशेष जिसका आव्हान किया है, उसके शरीर में प्रवेश कर जाता है। जगरिया द्वारा देव कथा के पश्चात डगरिया आशीष प्रदान करता है। सम्पूर्ण वातावरण एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव में आ जाता है और एकाग्रता के साथ लोक कथा व देवता से जुड़ा रहता है। जागर घर के भीतर या बाहर आंगन में आयोजित किया जाता है। सोर में लगने वाली महत्त्वपूर्ण जागर गोरिल, हरु, सैम, गंगनाथ आदि स्थानीय देवों पर आधारित हैं।

जागर की इस परंपरा के कुछ अंशोको भड़ा गाथा गायन परंपरा अपने में समाहित किये हुए है।

भड़ा गाथा गायन परंपरा मुख्यता जनपद पिथौरागढ़ के डीडीहाट तहसील, कनालाछीना, अस्कोट, धारचूला, जौलजीवी व नेपाल से जुड़े जनपद पिथौरागढ़ के ईलाको में पाई जाती है। अतः पिथौरागड़ इलाके में बोली जाने वाली भाषा सोरयाली बोली,अस्कोट ईलाके में बोली जानेवाली अस्कोटी बोली और नेपाल से जुड़े इलाको में

नेपाली बोली का प्रभाव लोकगाथा गायन की प्रस्तुती में साफ दिखाई देता है। यह सभी बोलीयाँ कुमाऊँनी भाषा की बोलियों में से प्रमुख बोली है। 'ग्रियसर्न' ने कुमाऊँनी भाषा का प्रारम्भ खष व दरद जामियों की भाषा से माना है, जिसमें बाद में राजस्थानी भाषा सम्मिलित हुई। कुमाऊँ में कई कहावतें दैनिक जीवन में प्रयोग में लाई जाती हैं, जो स्वयं में समाज का तार्किक दपर्ण हैं। ये कहावतें ऐतिहासिकता, उपदेश, व्यंग्य, ऋतु, कृषि, सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक दृष्टिकोण आदि पर आधारित हैं।जिनका प्रयोग लोक गाथा गायन भड़ा में लोकगायक बीच बीच में बड़ी खूबसुरतीसे करता है

अस्कोट इलाके की कुछ महत्त्वपूर्ण कहावतें निम्न है :-

1. **म्योरो गवालों थोकदारों शालो।**

   अर्थात् सेवक का कामचोर होना।

2. **ब्वारी क लक्षण मैत बठे। अर्थात् बहू के संस्कार पैतृक होते है।**

3. **लौडा देखन यारौ लौंडाक यार देखन। अर्थात् लडके का पता उसकी संगत से ही मालूम हो जाता है।**

4. **जै घर नानतिन बीक घर कौतिक। अर्थात बच्चों वाले घर में प्रसन्नता छाई रहती है।**

5. **बरखा ह्यं तो संभालों ग्यूं। अर्थात् वर्षा होने से गेहूं अधिक होता है।**

6. **सांप को छौनों पेट बठे क्वार। अर्थात् सांप का बच्चा पेट से ही विषैला होता है।**

भड़ा गाथा गायन में जब लोक गायन को बीच में रोक कर गाथा बोलकर आगे बढाता तो वह कुछ प्रचलित मुहावरें का प्रयोग भी भड़ा में करता है। कुछ प्रचलित मुहावरे निम्नवत है:-

मुहावरा	अर्थ
1. श्याल वासण	अशुभ संकेत
2. हाथ खुट पटकण	उत्तेजित होना
3. छाती फुलूण	गर्व प्रदर्शित करना
4. टसक-मसक चलण	अनुचित चाल
5. बिरालू का जस चलण	बिल्ली की चाल चलना
6. नराई लगण या- नरै लगण	याद आना
7. लछ्या कोठारी क चैल	मूर्ख व्यक्ति
8. आंख लागण	नींद आना
9. खिस्यान पड़ना	शर्मिन्दा होना

उपरोक्त सभी मुहावरे मात्र शाब्दिक अर्थ लिये हुये नहीं वरन् सामाजिक, चारित्रिक व मानसिक स्तर आदि के भी प्रतीक हैं। प्रत्येक मुहावरा अपने अर्थ को स्पष्ट करने में पूर्णतः सफल है, जैसे, स्याल बासण का प्रयोग होते हुये अनिष्ट का संकेत होने लगता है। टसक-मसक चलण से चरित्र मूल्यांकन होता है व जब नारी निरायी लागण कहती तो मानों सारी संवेदनायें मात्र दो शब्दों में उभर कर सामने आ जाती है। मुहावरे अभिव्यक्ति का एक सक्षम माध्यम हैं, जो कुमाऊ में वर्षो पूर्व कहे गये जो वर्तमान में भड़ा परंपरा में प्रचलित हैं।

सैंसस आफ इंडिया सन् 1961 भाग-1 भाषा सारणी पृष्ट में पिथौरागढ़ में कुमाऊँनी बोलने वालों की संख्या 1961 मे 2,44,555 बताई गई है। सोरयाली बोली स्वतंत्र और अपनी विशिष्ठ शैली के लिये भाषा की दृष्टी से अन्य स्थानों की भाषा जैसे: अस्कोट की अस्कोटी बोली, काली कुमाऊँ की कुमय्या भाषा या नेपाली भाषा से सम्पर्क में अवश्य आई है परन्तु इसकी अपनी अलग शैली है। शब्दों का आदान-प्रदान भाषाओं में हुआ है, परन्तु भड़ा की भाषा ने अपनी अस्मिता को त्यागा नहीं है।

भड़ा परंपरा के सबंध मिट्टी से जुड़े हुये हैं, जिस कारण भड़ा के लोकगाथाए स्वयं में सुख-दु:ख, प्रसन्नता-व्याकुलता, बिछोड-मिलन के क्षणों को छुपाये हुये अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं। नर या नारी के हृदय के छिपे हुये भाव लोक गाथा से सरलता से व्यक्त हो जाते हैं।भड़ा गाथा गायक अपनी मुख्य गाथा में निम्नलिखित प्रकार के लोकगीतों को जोड देता हैं :-

1.धार्मिक संस्कार गीत।

2. कृषि व ऋतु सम्बन्धित गीत।

3. उत्सव और मेलों के गीत।

4. भगनौला, फाग,तोड, बैर, न्यौली आदि

भड़ा लोकगाथा गायन की रचना वर्षो पूर्व हुई जिनको नये लोकगायकों ने वर्तमान रुप दिया है। बैर, फाग और तोड़ सोर की प्राचीन लोक परम्पराओं के रुप हैं जो आज भी जीवित हैं। एक महत्वपूर्ण तोड़ निम्नवत है :-

'खैरना भुलाणी, लटुवा मसाणी।
रुखा डाणा घोड़ों बाट्यो, को पेवालो पाणी।
सौं जान पहाड़ रुछे, हयून हल्द्वानी।
हयून हल्द्वानी बे सासू गगनाधुराघा।

कुमू बै नडरा आया, कुमू बै निसाणा।
नौ जोड़ी नडारा आया, नौ जोड़ी निसाणा।
छुड़ पिठया लगा ल्या छै, अछत हराण।
अछयत हराण बे सासू गगनाधराघा।
द्वी ब्याग्यारा घर छन, तिसरी तू नौली।
बुढ़िया मयेड़ी मेरी, छाजा में बै रौली।
बनरिया गौं छ मेरो, बानर हकाली।
बानर कहालि बे सासू गगनाधुराघा।
गड़वानै कि गाड़ी टूटी, सौने की उतार।
बदलू को दोष न्हाती, गड़वान गंवार।
गड़वान गंवार बे सासू गगनाधुराघा।

भड़ा गाथा गायन का धार्मिक महत्तव के अतिरिक्त दूसरा महत्तवपूर्ण पक्ष उसका नाट्य रुप है। चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में कुमाऊँ की जनता की बौद्धिक व सांस्कृतिक चेतना का परिचय भड़ा है, जिसमें मानवीय गुणों का वर्तमान से सुन्दर संबंध है

भड़ो में गायी जाने वाली मुख्य गाथाए उन वीरोंकी है जिनकी वीरता के किस्से कुमाऊँ हिमालय में गुंजते है। इनका सांस्कृतिक राजनैतिक व ऐतिहासिक महत्व है जिनमें कुमाऊँ हिमालय का इतिहास छुपा है।

कुमाऊँ की भड़ा गाथा गायन की परंपरा का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है की भड़ा का सांस्कृतिक महत्तव के अतिरिक्त उसका सामाजिक व धार्मिक महत्त्व भी है यह महत्त्व लोकनाट्या कलाओ को वर्तमान में भी जीवंत व गतिशिल बनाए हुए है।भड़ों का महत्त्व इस तथ्य से भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि लोकनाट्य की परम्पराओं में वर्षों का इतिहास, समाज व संस्कृति का मूल छिपा है। लोकजीवन की जैसी अभिव्यक्ति लोक गाथा परंपरा भड़ों में होती है वैसी उर्जा, सामाजिक दृष्टि व सोच अन्यत्र नहीं मिलती।

यह बात महत्वपूर्ण है कि कुमाऊँ के लोक व जनजातिय समाज में वर्ष भर अनेक त्यौहार और लोकउत्सव मनाए जाते हैं। उन दिनों धार्मिक कार्य किये जाते है और इसके अतिरीक्त त्यौहारों में मानसिक संतुष्टि व परिवार के शुभ की कामना होती है। इनसे ही भड़ौ जहाँ जीवन के सत्य को प्रतिपादित करने की दृष्टि से लोकनाट्य कला मात्र कला ना रहकर जीवन की दृष्टि बन जाती है।

हिमालयी समाज में प्रचलित मान्यताओं व विचारों में पीढ़ीयों से पहाड़ी जीवन का ज्ञान संचित है जिससे शाश्वत व सामूहिक दोनों प्रचार का सत्य समाज के संदर्भ में उजागर होता है इसीलिए भड़ा परंपरा के लिए भी यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि इन मान्यताओं व विचारों को वो कला के माध्यम से सामने लाएँ। क्योंकि जीवन के विरोधाभासों से मुक्त होने पर भी मानस निष्क्रिय नहीं वरन चिंतनशील होता है। कारण है कि गाँव का आंगन हो या खेत खलिहान हर जगह उसे उस लय व ताल की आवश्यकता होती है जिसमें कहीं न कहीं धर्म और परम्पराएं नीहित हैं जो मनोरंजन के साथ-साथ मन की शुद्धी के लिए भी महत्त्वपूर्ण हो। इसीलिए ग्रामीण जन स्वयं के भीतर की रचना दृष्टि व कलात्मकता को बाहर लाने के लिए अवसर तलाशता है जिसमें लोक नाट्य उसे एक सशक्त माध्यम के रुप में मिलता है।

कुमाऊँ के ग्रामीण या जनजातिय लोकसंस्कृति का दर्शन मुख्यतः ग्रामीण सोच व जीवन पध्दति के लोक पक्षीय ज्ञान पर आधारित है जहाँ अमूर्त विचार लोकमूर्त रुप में होकर जीवन्त हो जाता है , और लोकसंस्कृति इसी विचार को जीवन के आस पास से ग्रहण करती हैं जिसके केन्द्र में आस्था, विश्वास, श्रद्धा, समरसता, उत्साह व आनंद आदि विविध जीवन के रंग समाए हैं और यही रंग भड़ौ गाथा परंपरा को मोहक रुप प्रदान करते हैं।

भारतीय लोकनाट्यो की सांस्कृतिक परम्परा में धर्म का प्रभाव हर प्रान्त में देखा जा सकता है इसलिए कुमाऊँ के संदर्भ में भी लोकनाट्यो में धार्मिक भावना देखी जा सकती है।आध्यात्मिक भावना कुमाऊँ लोक-मानस में पूर्णतः समायी हुई है, परमात्मा और प्रकृति के प्रति यहाँ के मानव में परम विश्वास है हर अलौकिक शक्ति या प्रभावकारी शक्ति यहाँ के लिए देवतुल्य हैं। यहाँ तक कि अनिष्टकारी शक्तियाँ भी कुमाऊँ में देवी-देवताओं की तरह पूजी और नचायी जाती हैं।

यही कारण है कि कुमाऊँ में देवी-देवताओं से लकर अंछरियों (अप्साराओं), भूतो ओर रणभूतों आदि को देवताओं की तरह पूजा और नचाया जाता है। इसी से भड़ौ परंपरा के माध्यम से कुमाऊँ में लोग की दृष्टि व सामाजिक महत्त्वों का समझा जा सकता है।

कुमाऊँ के मात्र धार्मिक ही नहीं वरन सामाजिक नृत्यों में भी धार्मिक भावना के दर्शन होते हैं। यहाँ तक की स्वच्छन्द गीत वाले ढाक्की-बाद्दी भी अपने नृत्य लोकनाट्यो में देवी-देवता-विशेष का स्त्वन (नृत्य गीत शुरु करने से पहले)करना नहीं भूलते। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इन भड़ा गाथा में वर्णित लोक विश्वास, रीति-रिवाज, स्वच्छन्द जीवन और कुमाऊँ लोक-मानस की हिमालयी संस्कृति की सोच समाज के आंकलन के लिए महत्त्वपूर्ण है। जिसके बिना कुमाऊँनी समाज को समझा नहीं जा सकता है।

कुमाऊँ के अधिकांश भड़ा परंपरा से जुडे लोक कलाकार समाज के वह लोग हैं जिन्हे खेत या मेहनत का काम करना पड़ता है। ये लोग श्रम की प्रक्रिया से हट कर के या अपने सामाजिक परिवेश से अलग-थलग हो कर सोच ही नहीं सकते। ये लोक

कलाकार प्रत्यक्ष आजीविका का काम भौतिक वास्तविकताओं के निर्माण से पाते हैं जैसे खेती या श्रम के अन्य कार्य।लेकिन मानसिक संतुष्टि के लिए यह कला की तरफ मुड़ जाते हैं। इसिलिए लोक कलाकारों को जहाँ लोककला जन से जोड़ती है वहीं उनको अपने सामाजिक सरोकार का भी एहसास होता है यही एहसास उन्हेंचिन्तनशील करके समाज से जोड़ता है और चेतना के फलस्वरुप लोकनाट्यो का सर्जन होता है, लोक कलाकार के मन में श्रम से उत्पन्न अन्दर की थकावट का दूर करने की जो भावना पैदा होती है वही भावना लय, ताल व गान की सहायता से भड़ौ के रुप में सामने आती है।

यद्यपि परम्परागत विचारों में मानव की प्राचीन कल्पनाशीलता को धार्मिक दृष्टि से ही देखा गया है, और परिवर्तन के आधुनिक पक्षधर उनमें केवल, अज्ञान और तर्कहिनता की ही झलक पाते हैं लेकिन यदि गहराई से उत्तराखंड के लोकनाट्यो का अध्ययन किया जाये तो उनके आधुनिक महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि यह लोकनाट्य कलायें मात्र नाट्य ना होकर मानव विकास की मनोवैज्ञानिक दृष्टि है।

आधुनिक काल में धार्मिक मान्यताएं बड्डी तेज़ी से बदल रही है। फिर भी भौगोलिक कारणों से, पहाड़ो से घिरे रहने के कारण यहाँ के धार्मिक विश्वासों में अत्याधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। सत्य तो यह है कि आज भी कुमाऊँ की प्रत्येक पाषाण शिला और नदी किसी न किसी देवता या ऋषि के नाम पर आधारीत मानी जाती है और उसकी अपनी कथाएँ बन चुकी हैं। यहाँ की कठोर प्रकृति इस लोक विश्वास का प्रमाण है कि सर्वात्मा ईश्वर का निवास यहीं पर है और भड़ा को इन्ही परम्पराओं का विश्वास देखा जा सकता है।

कुमाऊँ हिमाचल में भड़ा परम्पराएं व्यक्ति सें निकाल कर सामूहिक रुप प्राप्त करने में सफल रही उनमें प्रकृति और मानव के जीवन संघर्ष के सूत्र बिखरे हैं।लोक संस्कृति के संरक्षण में यदि एक तरफ मन की भावना ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है तो दूसरी तरफ लोक मनोविज्ञान और लोक विज्ञान ने संस्कृति को मात्र मनोरंजन का साधन स्वीकार ना कर उसे जीवन पद्धति का एक महत्वपूर्ण अंग बनाया है। इसीलिये कुमाऊँ मे भड़ा गाथा गायन परंपरा कला को मात्र मनोरंजन की ही नहीं वरन् सामाजिक दृष्टि से भी लोक कलाओं को जनमानस से जोड़ देती है।

कुमाऊँ कें संदर्भ में जहाँ भड़ागाथा परंपरा कला ग्राम्य की सृजनात्मकता को लोक विश्वास के समुचित अर्थो में शास्त्रीता से अलग कर उसे लोक-धार्मिता का मंच प्रदान करती है वहीं उत्तरांचल के लोकनाट्यो की लोकदृष्टी के पीछे धार्मिक व सामुदायिक भावना को महत्त्वपूर्ण बना देती है। जिस कारण दोनों के तादात्म्य से लोकनाट्य लोकमंच जगह पाते हैं। यही कारण है कि एक तरफ मेले, त्योहारों और परम्पराओं में लोकनाट्यो का महत्त्वपूर्ण स्थान है वहीं दूसरी तरफ धार्मिक कार्यो व मानसिक संतुष्टि में भी लोकनाट्य महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

बिना किसी शास्त्रीयता के दृष्टि से उत्पन्न कुमाऊँ की भड़ा परंपराओं में से निकली मौखिक परम्पराओं से उत्पन्न गाथाएँ हिमालय के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण बना देती हैं। भड्रो में आनंद की अनुभूति तो है लेकिन कुमाऊँ जैसे क्षेत्र में आत्मिय अनुभूति महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि लोकजीवन में आस्था, विश्वास, श्रध्दा के बीच लोकजीवन की निरसता लोककला ही नये अर्थो में उद्वेलित करती है,जिनका कुमाऊँनी पहाड़ी में अत्यंत महत्त्व है।